ResearchNext International Multidisciplinary Journal

Vol- 2, Issue- 2, April-June 2026 ISSN (O)- 3107-9725

Email id: editor@researchnextjournal.com Website- www.researchnextjournal.com

अलवर जनपद में ब्राह्मण धर्म के संप्रदायों का ऐतिहासिक विश्लेषण

दिनेश मीणा

शोध छात्र, प्रा.भा.इति.सं. एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

प्रो. प्रभात कुमार

प्रोफेसर, प्रा. भा. इति.सं. एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल कांगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार

Article Info: *(Recieved- 08/01/2026, Accept- 18/02/2026, Published- 03/04/2026)*

DOI- 10.64127/rnimj.2026v2i2001

सारांश

यह आलेख अलवर जनपद में ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों के ऐतिहासिक विकास और उनके समाजशास्त्रीय प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में वैदिक, वैष्णव, शैव तथा शाक्त संप्रदायों की उत्पत्ति, विस्तार और स्थानीय समाज पर उनके प्रभाव का विवेचन किया गया है। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन संप्रदायों ने न केवल धार्मिक जीवन को प्रभावित किया, बल्कि सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक परंपराओं और शक्ति–संतुलन के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आलेख में ऐतिहासिक परिवर्तनों के साथ इन संप्रदायों की बदलती स्थिति और वर्तमान संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का समालोचनात्मक अध्ययन किया गया है।

कुंजी शब्द– ब्राह्मण धर्म, संप्रदाय, अलवर जनपद, वैष्णव, शैव, शाक्त, समाजशास्त्रीय विश्लेषण, सांस्कृतिक प्रभाव, धार्मिक संरचना

भूमिका

अलवर जनपद, राजस्थान का एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और ऐतिहासिक क्षेत्र रहा है, जहाँ विविध धार्मिक परंपराओं और संप्रदायों का समन्वित विकास देखने को मिलता है। इस क्षेत्र की सामाजिक संरचना में ब्राह्मण धर्म का विशेष स्थान रहा है, जिसने न केवल धार्मिक जीवन को दिशा दी, बल्कि सांस्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक मान्यताओं के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ब्राह्मण धर्म के अंतर्गत विकसित विभिन्न संप्रदाय जैसे– वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त तथा अन्य उपसंप्रदाय अलवर के धार्मिक परिदृश्य को बहुआयामी बनाते हैं। इन संप्रदायों के माध्यम से धार्मिक आस्थाओं, अनुष्ठानों और जीवन–मूल्यों का प्रसार हुआ, जिसने स्थानीय समाज के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो अलवर क्षेत्र प्राचीन काल से ही धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र रहा है। यहाँ विभिन्न कालखंडों प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक में ब्राह्मण धर्म के संप्रदायों का विकास, परिवर्तन और पुनर्संरचना हुई। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के प्रभाव से वैष्णव और शैव परंपराओं का विशेष विस्तार हुआ, जबकि आधुनिक काल में सामाजिक सुधार आंदोलनों और शिक्षा के प्रसार ने इन संप्रदायों के स्वरूप और कार्यप्रणाली को प्रभावित किया। इस प्रकार, ब्राह्मण संप्रदायों का इतिहास केवल धार्मिक विकास की कथा नहीं है, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक समन्वय और वैचारिक संघर्षों का भी द्योतक है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ब्राह्मण संप्रदायों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि

ये संप्रदाय केवल आस्था के केंद्र नहीं थे, बल्कि सामाजिक संगठन, जातीय संरचना और शक्ति–संतुलन के महत्वपूर्ण साधन भी रहे हैं। इन संप्रदायों के माध्यम से सामाजिक मानदंडों का निर्धारण, धार्मिक अधिकारों का संरक्षण तथा ज्ञान और परंपरा का संचार होता रहा। साथ ही, विभिन्न संप्रदायों के बीच अंतर्संबंध, प्रतिस्पर्धा और सहयोग की प्रक्रियाएँ भी समाज की गतिशीलता को दर्शाती हैं। अलवर में ब्राह्मण धर्म के संप्रदायों की स्थिति और प्रभाव को समझने के लिए उनके सामाजिक आधार, अनुयायियों की संरचना तथा स्थानीय समाज के साथ उनके अंतःक्रिया का विश्लेषण आवश्यक है। वर्तमान संदर्भ में, जब समाज तेजी से परिवर्तनशील है, तब पारंपरिक धार्मिक संप्रदायों की भूमिका और प्रासंगिकता का पुनर्मूल्यांकन भी आवश्यक हो जाता है। अलवर जनपद में ब्राह्मण संप्रदायों का अध्ययन न केवल अतीत की समझ प्रदान करता है, बल्कि यह वर्तमान सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य को भी स्पष्ट करने में सहायक है। इस आलेख का उद्देश्य अलवर क्षेत्र में ब्राह्मण धर्म के विभिन्न संप्रदायों के ऐतिहासिक विकास, उनकी सामाजिक स्थिति तथा उनके व्यापक प्रभाव का समग्र एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना है, ताकि इस क्षेत्र की धार्मिक और सामाजिक संरचना को गहराई से समझा जा सके।

अलवर की धार्मिक परम्पराएँ

अलवर रियासत में प्राचीन काल से ही विविध धार्मिक परम्पराएँ निर्विघ्न रूप से विकसित होती रही हैं। यहाँ हिन्दू, बौद्ध, जैन तथा इस्लाम जैसे प्रमुख धर्मों का सह–अस्तित्व देखने को मिलता है, जो इस क्षेत्र की उदार और समन्वयवादी सांस्कृतिक प्रवृत्ति का परिचायक है। राज्य के शासकों तथा सामान्य जनता दोनों के संयुक्त प्रयासों से देवी–देवताओं के मंदिर, मठ, मस्जिद एवं अन्य धार्मिक स्थलों का निर्माण हुआ, जिसने अलवर को एक बहुधार्मिक एवं सांस्कृतिक केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार, धार्मिक सहिष्णुता और आस्था की बहुलता यहाँ के सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषताएँ रही हैं। जनसंख्या की दृष्टि से अलवर में हिन्दू धर्मावलम्बियों की संख्या सर्वाधिक रही है। हिन्दू समाज में विशेषतः पंचदेव शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु और शक्ति की उपासना का व्यापक प्रचलन रहा है, जो धार्मिक विविधता के भीतर एकात्मकता का संकेत देता है। इसके साथ ही हिन्दू समाज अनेक मत–मतान्तरों में विभक्त रहा है, जिनमें से लगभग आधी जनसंख्या वैष्णव सम्प्रदाय से सम्बद्ध थी, जबकि लगभग एक–चौथाई लोग शैव परम्परा का अनुसरण करते थे। शाक्त सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी, जबकि सिख और जैन धर्म को मानने वाले भी सीमित संख्या में उपस्थित थे। हिन्दुओं के अतिरिक्त मुस्लिम समुदाय भी यहाँ विद्यमान था, किन्तु उनकी संख्या अपेक्षाकृत कम थी। उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में अनेक मुस्लिम समुदाय ऐसे थे, जो मूलतः हिन्दू समाज से धर्मांतरित हुए थे। मेव समुदाय, जो स्वयं को क्षत्रिय वंशज मानता है, इस सांस्कृतिक–धार्मिक अंतर्संबंध का एक प्रमुख उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अलवर राज्य में वैष्णव और शैव सम्प्रदायों के अंतर्गत अनेक उप–सम्प्रदायों एवं पंथों का भी विकास हुआ। इनमें कबीर पंथी, चरणदासी, लालदासी, रामस्नेही तथा बेनामी पंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये पंथ भक्ति, समानता और सामाजिक सुधार की भावना से प्रेरित थे तथा इन्होंने धार्मिक आडम्बरों के विरुद्ध एक वैकल्पिक मार्ग प्रस्तुत किया। कबीर पंथ की एक प्रमुख शाखा 'गरीबदासी' भी इस क्षेत्र में प्रचलित रही, जिसने संत परम्परा को आगे बढ़ाया। इन उप–सम्प्रदायों ने समाज में समन्वय, सहिष्णुता और आध्यात्मिक चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वैष्णव सम्प्रदाय, जो अलवर में अत्यंत प्रभावशाली रहा, अपनी उदारता और समन्वयवादी दृष्टिकोण के लिए विशेष रूप से जाना जाता है। यह सम्प्रदाय विभिन्न धार्मिक विचारों को आत्मसात करने की क्षमता रखता है और इसी कारण से यह जनसामान्य के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रहा है। हिन्दू धर्म के दार्शनिक पक्ष में अवतारवाद की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसका उद्देश्य धर्म की स्थापना और अधर्म का विनाश माना गया है। इस विचारधारा की जड़ें वैदिक काल तक जाती हैं, जहाँ इसके प्रारम्भिक संकेत मिलते हैं। वैदिक और उत्तरवैदिक ग्रंथों में अनेक अवतारों का उल्लेख मिलता है, जिनमें विष्णु के दस अवतार विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं– मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।

भगवान विष्णु को परमात्मा और अपने प्रमुख इष्टदेव के रूप में स्वीकार करने वाले अनुयायी वैष्णव कहलाते हैं, और उनके सिद्धान्तों, आस्थाओं तथा दर्शन का समुच्चय ही वैष्णव धर्म के रूप में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार, अलवर रियासत में वैष्णव धर्म न केवल एक धार्मिक धारा के रूप में, बल्कि एक व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक शक्ति के रूप में भी प्रतिष्ठित रहा, जिसने यहाँ के जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया।

अलवर राज्य में वैष्णव सम्प्रदाय का स्वरूप अत्यंत समृद्ध, बहुपरतीय और दार्शनिक दृष्टि से विविधतापूर्ण था। यहाँ वैष्णव धर्म केवल एक आस्था मात्र न होकर सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का अभिन्न अंग था, जिसने लोकजीवन, धार्मिक व्यवहार, उत्सव–परम्पराओं और नैतिक मूल्यों को गहराई से प्रभावित किया। वैष्णव सम्प्रदाय की आंतरिक संरचना चार प्रमुख शाखाओं रामानुज (श्री सम्प्रदाय), वल्लभ (विष्णु स्वामी सम्प्रदाय), निम्बार्क (सनकादिक सम्प्रदाय) तथा माध्वाचार्य सम्प्रदाय में विभाजित थी। इन शाखाओं के माध्यम से वैष्णव धर्म के विभिन्न दार्शनिक प्रतिमान, साधना–पद्धतियाँ और भक्ति के स्वरूप समाज में प्रचलित हुए, जिससे अलवर का धार्मिक जीवन अत्यंत गतिशील और बहुआयामी बना।

रामानुज सम्प्रदाय, जिसे 'श्री सम्प्रदाय' भी कहा जाता है, अलवर में सर्वाधिक प्रभावशाली शाखा के रूप में प्रतिष्ठित था। इस सम्प्रदाय का दार्शनिक आधार 'विशिष्टाद्वैतवाद' है, जिसके अनुसार ब्रह्म (विष्णु) और जीव के बीच अभिन्नता होते हुए भी एक विशिष्ट भेद विद्यमान रहता है। यह सिद्धान्त भक्ति को मोक्ष का प्रमुख साधन मानते हुए ईश्वर के सगुण–निर्गुण दोनों स्वरूपों की स्वीकृति प्रदान करता है। अलवर क्षेत्र में इस सम्प्रदाय के अनुयायी बड़ी संख्या में विद्यमान थे, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इसकी शिक्षाएँ जनसामान्य के लिए सहज, व्यावहारिक और आकर्षक थीं। रघुनाथजी, लक्ष्मीनारायण, सीताराम तथा नरसिंह के मंदिर इस सम्प्रदाय के प्रमुख केंद्र थे, जहाँ नियमित पूजा–अर्चना, भजन–कीर्तन और धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से भक्तों में आध्यात्मिक चेतना का संचार होता था। इन मंदिरों ने न केवल धार्मिक आस्था को सुदृढ़ किया, बल्कि सामाजिक एकता और सांस्कृतिक निरंतरता को भी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

वल्लभ सम्प्रदाय, जिसे 'विष्णु स्वामी सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है, का राजस्थान में आगमन 17वीं शताब्दी में हुआ और इसके प्रभाव से अलवर रियासत भी अछूती नहीं रही। इस सम्प्रदाय ने कृष्ण भक्ति, विशेषतः श्रीनाथजी की उपासना, को अत्यधिक लोकप्रिय बनाया। वल्लभ सम्प्रदाय का दार्शनिक आधार 'शुद्धाद्वैतवाद' है, जो ब्रह्म और जीव के पूर्ण अभेद की स्थापना करता है। इसके साधना–पक्ष को 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है, जिसमें भगवान की कृपा (पुष्टि) को मोक्ष प्राप्ति का मूल आधार माना गया है। इस सम्प्रदाय की विशेषता यह है कि यह कठोर तपस्या या संन्यास के स्थान पर प्रेम, स्नेह और सगुण भक्ति को अधिक महत्व देता है।

वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी अपने धार्मिक जीवन में विशिष्ट आचार–संहिताओं का पालन करते हैं। वे गले में तुलसी की कंठी धारण करते हैं, ऊर्ध्वपुण्ड तिलक लगाते हैं तथा किसी भी वस्तु का सेवन भगवान को अर्पित किए बिना नहीं करते, जो उनकी भक्ति–प्रधान जीवनशैली को स्पष्ट करता है। इसके अतिरिक्त, इस सम्प्रदाय में 'सेवा' का विशेष महत्व है, जिसमें भगवान को बालक या प्रियतम के रूप में मानकर उनकी सेवा की जाती है। यह भावात्मक भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है, जिसने लोकजीवन में स्नेह और आत्मीयता के भाव को प्रोत्साहित किया। यद्यपि अलवर में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या अपेक्षाकृत कम थी, फिर भी इसका सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव अत्यंत गहरा था, विशेषकर उत्सवों, संकीर्तन और मंदिर–परम्पराओं में।

निम्बार्क सम्प्रदाय, जिसे 'सनकादिक सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है, भी अलवर क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान रखता था। इस सम्प्रदाय का दार्शनिक आधार 'द्वैताद्वैतवाद' है, जिसमें जीव और ब्रह्म के बीच भेद और अभेद दोनों को स्वीकार किया गया है। यह सम्प्रदाय राधा–कृष्ण की उपासना पर विशेष बल देता है तथा माधुर्य–भाव की भक्ति को सर्वोच्च मानता है। निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी रास–लीला, संकीर्तन और प्रेम–भक्ति के माध्यम से ईश्वर के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते थे। यद्यपि इस सम्प्रदाय का प्रभाव सीमित था, फिर भी इसने अलवर की भक्ति परम्परा को एक विशिष्ट आध्यात्मिक आयाम प्रदान किया।

माध्वाचार्य सम्प्रदाय, जो 'द्वैतवाद' के सिद्धान्त पर आधारित है, भी वैष्णव धर्म की एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में अलवर में विद्यमान था। इस सम्प्रदाय के अनुसार जीव और ब्रह्म के बीच पूर्ण भेद है, और ईश्वर की कृपा तथा भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है। इस सम्प्रदाय ने वैदिक परम्परा और तर्कशास्त्र को विशेष महत्व दिया, जिससे धार्मिक विचारधारा में बौद्धिकता और दार्शनिक गहराई का समावेश हुआ।

निम्बार्क सम्प्रदाय वैष्णव धर्म की एक प्राचीन और दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण शाखा है, जिसका प्रवर्तन आचार्य निम्बार्क द्वारा किया गया। निम्बार्क का जन्म दक्षिण भारत के तेलंग ब्राह्मण परिवार में हुआ माना जाता है, और वे कालक्रम में रामानुजाचार्य के पश्चात तथा माध्वाचार्य से पूर्व, लगभग 11वीं शताब्दी में सक्रिय रहे। इस प्रकार, वे मध्यकालीन वैष्णव भक्ति आंदोलन के उन प्रमुख आचार्यों में गिने जाते हैं, जिन्होंने वैदांतिक चिंतन को भक्ति के साथ समन्वित रूप में प्रस्तुत किया।

निम्बार्काचार्य ने अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन हेतु अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की, जिनमें 'वेदान्त पारिजात सौरभ' और 'दशश्लोकी' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों में उनके दार्शनिक विचारों, भक्ति–साधना और ब्रह्म–जीव संबंध की व्याख्या अत्यंत स्पष्ट और व्यवस्थित रूप में प्राप्त होती है। निम्बार्क सम्प्रदाय का मूल दार्शनिक सिद्धान्त 'द्वैताद्वैतवाद' है, जिसमें जीव और ब्रह्म के मध्य भेद और अभेद दोनों को समान रूप से स्वीकार किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार जीव ईश्वर से भिन्न भी है और उससे अभिन्न भी अर्थात् यह संबंध न तो पूर्णतः द्वैत है और न ही पूर्णतः अद्वैत, बल्कि दोनों का समन्वित स्वरूप है।

यह सम्प्रदाय 'सनक सम्प्रदाय' के नाम से भी जाना जाता है, क्योंकि इसकी परम्परा का संबंध सनक, सनंदन, सनातन और सनत्कुमार जैसे सनकादिक ऋषियों से जोड़ा जाता है। इस परम्परा में राधा–कृष्ण की उपासना को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, जिसमें माधुर्य–भाव की भक्ति प्रमुख होती है। निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी प्रेम, समर्पण और रास–लीला के माध्यम से ईश्वर के साथ आत्मिक संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

अलवर क्षेत्र में निम्बार्क सम्प्रदाय का प्रभाव विभिन्न मंदिरों और धार्मिक केंद्रों के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यहाँ राधाकृष्ण, गोपाल बिहारी, मदन गोपाल, आनन्द बिहारी, बांके बिहारी, दामोदर तथा गोपी वल्लभ आदि देवताओं के मंदिर इस सम्प्रदाय से सम्बद्ध रहे हैं। इन मंदिरों में भक्ति, संकीर्तन, रास–लीला और उत्सवों के माध्यम से धार्मिक जीवन को जीवंत बनाए रखा जाता था। यद्यपि इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या अत्यधिक नहीं थी, तथापि इसकी आध्यात्मिक परम्परा और भक्ति–भावना ने अलवर के सांस्कृतिक जीवन को विशेष रूप से प्रभावित किया।

माधवाचार्य सम्प्रदाय, जिसे सामान्यतः 'माध्व सम्प्रदाय' भी कहा जाता है, वैष्णव धर्म की एक प्रमुख शाखा है, जिसका आधार 'द्वैतवाद' का सिद्धान्त है। अलवर राज्य में इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या उल्लेखनीय थी और यह संख्या के दृष्टिकोण से दूसरे स्थान पर आता था। इस सम्प्रदाय के अनुयायी भगवान विष्णु को परम ब्रह्म मानते हुए उनकी उपासना करते हैं और विष्णु भक्ति को ही मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन मानते हैं। माध्वाचार्य द्वारा प्रतिपादित द्वैतवाद के अनुसार जीव और ब्रह्म के मध्य पूर्ण भेद है, अर्थात् जीव कभी भी ब्रह्म के समान नहीं हो सकता। इस सिद्धान्त में ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता और जीव की निर्भरता को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार, भक्ति यहाँ केवल एक साधना न होकर, ईश्वर की कृपा प्राप्त करने का एकमात्र माध्यम मानी जाती है। माधवाचारी सम्प्रदाय में वैदिक परम्परा, तर्कशास्त्र और शास्त्रीय अध्ययन को विशेष महत्व दिया जाता है। इसके अनुयायी धार्मिक अनुशासन, शास्त्राध्ययन और विधिवत पूजा–पद्धति का पालन करते हैं। अलवर में इस सम्प्रदाय का प्रभाव विशेष रूप से उन क्षेत्रों में देखा जाता था, जहाँ विद्वत् परम्परा और वैदिक अध्ययन की परंपरा सशक्त थी।

निम्बार्क और माधवाचार्य सम्प्रदायों ने अलवर राज्य में वैष्णव धर्म के दार्शनिक और भक्ति पक्ष को विविध आयाम प्रदान किए। जहाँ निम्बार्क सम्प्रदाय ने प्रेम और माधुर्य–भाव की भक्ति को प्रतिष्ठित किया, वहीं माधवाचार्य सम्प्रदाय ने तात्त्विक स्पष्टता और द्वैतवादी दृष्टिकोण के माध्यम से भक्ति को एक सशक्त दार्शनिक आधार प्रदान किया। इस प्रकार, इन दोनों सम्प्रदायों ने अलवर के धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन को गहराई से समृद्ध किया।

अलवर राज्य में वैष्णव सम्प्रदाय की इन चारों शाखाओं ने न केवल धार्मिक विविधता को समृद्ध किया, बल्कि समाज के नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन को भी गहराई से प्रभावित किया। इन सम्प्रदायों के माध्यम से भक्ति, समन्वय, सहिष्णुता और आध्यात्मिकता के विविध रूपों का विकास हुआ, जिसने अलवर को एक महत्वपूर्ण धार्मिक–सांस्कृतिक केंद्र के रूप में स्थापित किया।

शैव सम्प्रदाय

अलवर रियासत के धार्मिक परिदृश्य में शैव सम्प्रदाय का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ के हिन्दू धर्मावलम्बियों में लगभग एक–चौथाई जनसंख्या शैव शाखा से सम्बद्ध थी, जो इस सम्प्रदाय की व्यापकता और सामाजिक स्वीकार्यता को दर्शाती है। शैव धर्म के अनुयायियों के प्रधान इष्टदेव भगवान शिव हैं, जिन्हें सृष्टि के संहारक, पुनर्संरचनाकार तथा परम तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अलवर क्षेत्र में गुसाईं, गिरी, पुरी, नाथ आदि परम्पराओं से जुड़े साधक शैव सम्प्रदाय के प्रमुख प्रतिनिधि थे, जो विभिन्न साधना–पद्धतियों और तप–परम्पराओं के माध्यम से शिव–भक्ति का प्रचार–प्रसार करते थे।

शैव सम्प्रदाय की एक विशिष्ट विशेषता यह है कि इसमें वैष्णव धर्म की भाँति अवतारवाद की अवधारणा का

विकास नहीं हुआ। यहाँ शिव को किसी अवतार के रूप में नहीं, बल्कि मूल तत्त्व 'रुद्र' से विकसित 'शिवम्' अर्थात् कल्याणकारी, मंगलकारी और सर्वव्यापी चेतना के रूप में देखा गया। इस प्रकार, शैव धर्म का विकास एक स्वतंत्र दार्शनिक धारा के रूप में हुआ, जिसमें ईश्वर की निराकार एवं सगुण दोनों ही अवधारणाओं का समन्वय मिलता है।

शिव की उपासना की प्राचीनता अत्यंत गहरी मानी जाती है, जिसका संबंध प्रागैतिहासिक काल तक स्थापित किया जाता है। नवपाषाण युग की अनेक सभ्यताओं में भूमि की उर्वरता और सृजन–शक्ति के प्रतीक के रूप में लिंग–पूजा का प्रचलन था। यह परम्परा आगे चलकर शैव धर्म के एक प्रमुख अंग के रूप में विकसित हुई। कुछ विद्वानों ने शैव धर्म की प्राचीनता को सैन्धव (सिंधु) सभ्यता से जोड़ते हुए यह मत प्रस्तुत किया है कि वहाँ प्राप्त मुहरों पर अंकित शृंगधारी, योगमुद्रा में बैठे हुए मानवाकार देवता 'पशुपति शिव' के प्रारम्भिक रूप का संकेत देते हैं। इसके अतिरिक्त, सिंधु सभ्यता के अवशेषों में प्राप्त अनेक लघु शिवलिंग भी इस धारणा को बल प्रदान करते हैं। यद्यपि यह मत ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यंत आकर्षक है, तथापि सुस्पष्ट प्रमाणों और क्रमबद्ध विकास–श्रृंखला के अभाव में यह अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है।

अलवर क्षेत्र में शैव सम्प्रदाय के प्रभाव का सबसे स्पष्ट प्रमाण यहाँ स्थित प्राचीन मंदिरों और तीर्थस्थलों में देखा जा सकता है। इनमें नीलकंठेश्वर महादेव का मंदिर विशेष रूप से प्रसिद्ध है, जो अलवर से लगभग 38 मील दक्षिण–पश्चिम दिशा में राजौरगढ़ में स्थित है। इस मंदिर का ऐतिहासिक महत्व अत्यंत प्राचीन है; यहाँ प्राप्त शिलालेखों के अनुसार इसका निर्माण विक्रम संवत 1010 से पूर्व हुआ था। इस मंदिर में स्थापित शिवलिंग की आज भी विधिवत पूजा–अर्चना की जाती है, जो इस क्षेत्र में शैव परम्परा की निरंतरता और जीवंतता को दर्शाता है।

इसके अतिरिक्त, अलवर में वृहदेश्वर महादेव का मंदिर, किशनगढ़ स्थित राजेश्वर मंदिर तथा भानगढ़ का सोमेश्वर मंदिर भी शैव उपासना के प्रमुख केंद्र रहे हैं। ये मंदिर न केवल धार्मिक आस्था के प्रतीक हैं, बल्कि ऐतिहासिक और स्थापत्य दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। इनके माध्यम से शैव धर्म की परम्पराएँ, उत्सव, अनुष्ठान और सामाजिक–सांस्कृतिक गतिविधियाँ सतत रूप से संचालित होती रही हैं।

समग्रतः, अलवर रियासत में शैव सम्प्रदाय ने धार्मिक जीवन को एक गहन दार्शनिक आधार प्रदान किया। इसकी प्राचीनता, तपस्या–प्रधान साधना, प्रतीकात्मक उपासना और विविध उप–परम्पराओं ने इसे जनमानस में एक सशक्त और स्थायी स्थान दिलाया। शैव सम्प्रदाय केवल एक धार्मिक धारा ही नहीं, बल्कि अलवर के सांस्कृतिक और आध्यात्मिक जीवन का एक महत्वपूर्ण स्तंभ रहा है।

शाक्त सम्प्रदाय

अलवर रियासत के धार्मिक–सांस्कृतिक जीवन में शाक्त सम्प्रदाय का विशिष्ट और प्रभावशाली स्थान रहा है। राजस्थान के व्यापक लोकजीवन की भाँति यहाँ भी शक्ति–उपासना एक महत्वपूर्ण परम्परा के रूप में विकसित हुई। क्षेत्र के भौगोलिक परिवेश विशेषतः मरुस्थलीय परिस्थितियों, संघर्षपूर्ण जीवन–स्थितियों तथा युद्धों की प्रधानता ने शक्ति के उग्र एवं रक्षात्मक रूपों की आराधना को विशेष प्रोत्साहन दिया। यही कारण है कि शक्ति के विभिन्न अवतारों और रूपों की पूजा यहाँ के लोकजीवन की एक प्रमुख विशेषता बन गई।

अलवर में शाक्त सम्प्रदाय के अधिकांश अनुयायी शक्ति के रूप में भगवती दुर्गा की उपासना करते हैं, जिन्हें शक्ति, साहस, संरक्षण और विजय की अधिष्ठात्री देवी के रूप में माना जाता है। दुर्गा की आराधना न केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक है, बल्कि यह लोकजीवन में आत्मबल, सुरक्षा और सामूहिक एकता का भी आधार रही है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न जातियों और कुलों की अपनी–अपनी कुलदेवियाँ भी रही हैं, जिनकी पूजा विशेष श्रद्धा और परम्परागत विधियों से की जाती है।

अलवर के कछवाहा राजवंश की कुलदेवी 'जमवाय माता' रही हैं, जिनका ऐतिहासिक और धार्मिक महत्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। लोकपरम्परा के अनुसार, जयपुर के रामगढ़ क्षेत्र में मीणाओं के साथ हुए युद्ध के समय भगवती ने दुर्लभरायजी की सहायता की थी, जिसके उपलक्ष्य में उसी स्थान पर जमवाय माता का भव्य मंदिर निर्मित कराया गया। यह मंदिर बाणगंगा नदी के तट पर स्थित है और आज भी आस्था का प्रमुख केंद्र बना हुआ है। राजपरिवार में जन्मे बच्चों का मुण्डन संस्कार इसी पवित्र स्थल पर सम्पन्न कराया जाना इस परम्परा की निरंतरता को दर्शाता है।

इसी प्रकार, अन्य राजवंशों और जातीय समूहों की भी अपनी कुलदेवियाँ रही हैं जैसे– चौहान वंश की कुलदेवी आसावरी तथा राठौड़ वंश की कुलदेवी राजेश्वरी देवी (नागणेचिया)। इन कुलदेवियों की पूजा न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह सामाजिक एकता, वंशीय पहचान और सांस्कृतिक निरंतरता का भी आधार रही है।

अलवर सहित समूचे राजस्थान के ऐतिहासिक–सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में युद्ध, कुलदेवी और शाक्त सम्प्रदाय के मध्य एक अत्यंत गहरा और परस्पर आश्रित संबंध विकसित हुआ है। यह संबंध केवल धार्मिक आस्था तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक संगठन, राजनीतिक वैधता, सांस्कृतिक पहचान और मनोवैज्ञानिक शक्ति के स्तर पर भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। विशेषतः राजपूताने की युद्धप्रधान परम्परा में शक्ति–उपासना ने एक वैचारिक और आध्यात्मिक आधार प्रदान किया, जिसने युद्ध को केवल भौतिक संघर्ष न मानकर 'धर्म' और 'सम्मान' की रक्षा का माध्यम बना दिया।

प्रथम दृष्टया, युद्ध और शक्ति–उपासना का संबंध इस धारणा पर आधारित है कि देवी विशेषकर दुर्गा, काली या अन्य उग्र रूप असुरों का संहार कर धर्म की स्थापना करती हैं। यही पौराणिक प्रतिमान राजपूत और अन्य क्षत्रिय परम्पराओं में आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। युद्ध के समय योद्धा स्वयं को देवी का प्रतिनिधि अथवा उनका संरक्षित मानते थे, जिससे उनमें असाधारण साहस, आत्मविश्वास और त्याग की भावना उत्पन्न होती थी। इस प्रकार, युद्ध केवल सांसारिक सत्ता प्राप्ति का साधन न रहकर एक धार्मिक कर्तव्य (धर्मयुद्ध) के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

कुलदेवी की अवधारणा इस संबंध को और अधिक सघन बनाती है। प्रत्येक राजवंश या कुल की एक विशिष्ट देवी होती थी, जिसे उस वंश की रक्षक, मार्गदर्शक और शक्ति का स्रोत माना जाता था। युद्ध पर जाने से पूर्व कुलदेवी की पूजा, आशीर्वाद प्राप्त करना, और विजय के पश्चात् धन्यवाद स्वरूप बलि या विशेष अनुष्ठान करना ये सभी परम्पराएँ इस विश्वास को सुदृढ़ करती थीं कि युद्ध में सफलता देवी की कृपा पर निर्भर है। इस प्रकार कुलदेवी केवल धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि वंशीय एकता, सामूहिक चेतना और राजनीतिक वैधता की धुरी बन जाती थीं।

अलवर क्षेत्र में कछवाहा, चौहान और राठौड़ जैसे राजवंशों की कुलदेवियों जैसे– जमवाय माता, आसावरी और नागणेचिया की पूजा इसी संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। इन देवियों से जुड़े लोकाख्यान, जैसे युद्ध में देवी द्वारा सहायता प्रदान करना, केवल धार्मिक कथाएँ नहीं हैं, बल्कि वे उस सामूहिक स्मृति का हिस्सा हैं, जो समाज को एकजुट करती है और वीरता की परम्परा को निरंतर बनाए रखती है। इन कथाओं के माध्यम से यह धारणा स्थापित होती है कि देवी अपने भक्तों की रक्षा करती हैं और धर्म की स्थापना में सक्रिय भूमिका निभाती हैं।

शाक्त सम्प्रदाय की दार्शनिक पृष्ठभूमि भी इस संबंध को गहराई प्रदान करती है। शक्ति को सृष्टि की मूल ऊर्जा और समस्त क्रियाशीलता का आधार माना गया है। अतः युद्ध जैसी क्रियाओं में भी शक्ति की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है। इस दृष्टि से, युद्ध में विजय केवल भौतिक बल का परिणाम नहीं, बल्कि 'दैवी शक्ति' के अनुग्रह का प्रतीक होती है। यह विचारधारा सैनिकों और शासकों दोनों के लिए एक मनोवैज्ञानिक संबल का कार्य करती थी।

इसके अतिरिक्त, कुलदेवी की उपासना सामाजिक स्तर पर भी एकता और अनुशासन स्थापित करने में सहायक होती थी। एक ही कुल या समुदाय के लोग अपनी कुलदेवी के माध्यम से एक साझा पहचान और उद्देश्य से जुड़े रहते थे। युद्ध के समय यह एकता अत्यंत आवश्यक होती थी, क्योंकि इससे सामूहिक मनोबल सुदृढ़ होता था और संगठनात्मक शक्ति बढ़ती थी। कुलदेवी के प्रति सामूहिक आस्था ने समाज में नैतिक मूल्यों, कर्तव्य–बोध और त्याग की भावना को भी प्रोत्साहित किया।

अलवर और व्यापक राजस्थानी परिप्रेक्ष्य में युद्ध, कुलदेवी और शाक्त सम्प्रदाय के बीच का संबंध एक बहुआयामी संरचना है, जिसमें धर्म, राजनीति, समाज और मनोविज्ञान सभी का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। यह संबंध न केवल अतीत की युद्धपरम्पराओं को समझने में सहायक है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि किस प्रकार धार्मिक आस्थाएँ सामाजिक संरचना और ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को गहराई से प्रभावित करती हैं।

अलवर क्षेत्र में शक्ति–उपासना के अनेक प्रमुख केंद्र विद्यमान हैं, जो इस सम्प्रदाय की व्यापकता और

जन–आस्था को प्रतिबिंबित करते हैं। इनमें अलवर की मनसा देवी, माचेड़ी की वाराही देवी तथा थानागाजी क्षेत्र के किशोरी ग्राम में स्थित किशोरी देवी का विशाल शिखर मंदिर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये मंदिर न केवल पूजा–अर्चना के स्थल हैं, बल्कि स्थानीय मेलों, उत्सवों और सामाजिक गतिविधियों के भी केंद्र रहे हैं, जहाँ धार्मिकता और लोकसंस्कृति का अद्‌भुत समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

समग्रतः, शाक्त सम्प्रदाय ने अलवर रियासत के धार्मिक जीवन को शक्ति, साहस और संरक्षण की भावना से समृद्ध किया। इसकी परम्पराएँ केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी अत्यंत प्रभावशाली रही हैं। शक्ति–उपासना ने यहाँ के जनमानस में आत्मविश्वास, संघर्षशीलता और सामूहिक चेतना को सुदृढ़ किया, जिससे यह सम्प्रदाय अलवर की सांस्कृतिक पहचान का एक अभिन्न अंग बन गया।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ सूची–

1. पाउलेट, पी.डब्ल्यू., गजेटियर ऑफ अलवर (अनु. अनिल जोशी) पृ. 49
2. उपाध्याय, बलदेव, वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य और सिद्धान्त, पृ. 3
3. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 692
4. पाउलेट, पी.डब्ल्यू., गजेटियर ऑफ अलवर (अनु. अनिल जोशी) पृ. 50
5. पेमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन, पृ. 194
6. राधाकृष्णन, इण्डियन फिलॉसफी, वाल्यू–2, पृ. 751
7. पेमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में धार्मिक आन्दोलन, पृ. 187
8. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर अलवर, पृ. 125
9. पाउलेट, पी.डब्ल्यू., गजेटियर ऑफ अलवर (अनु. अनिल जोशी) पृ. 50
10. गहलोत, जगदीशसिंह, कच्छवाहों का इतिहास, पृ. 289
11. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृ. 719, 720
12. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर अलवर, पृ. 125
13. जोशी, अनिल, अलवर दर्शन, पृ. 44
14. रा.रा.अभि., बीकानेर, क्रमांक 205, बस्ता 26, ग्रन्थाक 3, पृ. 12
15. मायाराम, राजस्थान डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, अलवर, पृ. 125
16. गहलोत, जगदीशसिंह, कच्छवाहों का इतिहास, पृ. 290
17. रा.रा.अभि., बीकानेर, क्रमांक 205, बस्ता 26, ग्रन्थाक 3, पृ. 13, 14

Cite this Article

"दिनेश मीणा, प्रो. प्रभात कुमार", "अलवर जनपद में ब्राह्मण धर्म के संप्रदायों का ऐतिहासिक विश्लेषण", ResearchNext International Multidisciplinary Journal (RPIMJ), ISSN: 3107-9725 (Online), Volume:2, Issue:2, April-June 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."